मौलाना सै0 इब्ने हसन जारचवी साहब क़िब्ला

ज़कात

दौलत के सही और मुनासिब बटवारे का मसला हर मुल्क और हर ज़माने में परेशान करने वाला रहा है। कुछ मज़हब तो ऐसे हैं कि उन्होंने इसके हल करने की तरफ़ ध्यान ही नहीं दिया और कुछ ने सिरे से मिलकियत (जायदाद) को गुनाह कह दिया और और इस तरह बेकारी, मुफ़्तख़ोरी और रहबानियत (दुनिया से अलग हो जाने) का हौसला बढ़ाया। दूसरे मसलों की तरह इस मसले में भी इस्लाम ने बीच का रास्ता चुना है। इसने मेहनत करके जाएज़ तरीक़े पर दौलत कमाने को गुनाह नहीं बताया, हाँ उसको रोक रखने और ख़ुदा के रास्ते में ख़र्च न करने से रोका गया है।

"वह लोग जो सोने चाँदी को जोड़-जोड़ कर रखते हैं और ख़ुदा के रास्ते में ख़र्च नहीं करते उनको दर्दनाक अज़ाब की ख़बर सुना दो।" (तौबा-34)

"ताना देने वाले और ऐब निकालने वाले का बुरा हो, जो माल को इकटठा करता है और उसको गिन-गिन कर यह ख़याल करता है कि उसका माल उसको हमेशा ज़िन्दा रखेगा, हरगिज़ नहीं।" (हुमज़ह 1-3)

फ़िर ज़कात का टैक्स लगाकर दौलत को बेकार पड़े रहने और मिल्लते इस्लामिया के काम न आने से रोक दिया। क्योंकि जब हर शख़्स को लाज़मी तौर पर साल में एक ख़ास रक़म अदा करनी पड़ेगी तो वह कोशिश करेगा कि जहाँ तक हो यह रक़म मुनाफ़े से अदा करे और पूँजी को बचाकर रखे। वाज़ेह रहे कि ज़कात उन्हीं चीज़ों पर वाजिब होती है जो बाक़ी रहें और उनमें बढ़ोत्तरी होती हो यानी वह एक ज़माने तक अपनी हालत पर बाक़ी रहें और उनमें पैदावार या बदलाव की बुनियाद पर बढ़ने की सलाहियत मौजूद हो।

ज़कात कहाँ ख़र्च की जाए, क़ुरआने मजीद ने इस तरह बताया हैः-

"सदक़ात (ज़कात) फ़क़ीरों, मिस्कीनों और ज़कात के सिलसिले में काम करने वालों का हक़ है, उन लोगों के लिए जिनका दिल (इस्लाम की तरफ़) लगाना हो, और (उन लोगों के छुटकारे के लिए है) जो ग़ुलामी में हैं या क़र्ज़दार हैं या जिनको तावान (बदला) देना है। (इसके अलावा इसको) ख़ुदा के रास्ते में ख़र्च किया जा सकता है और मुसाफ़िरों की मदद के काम में लाया जा सकता है। यह हिस्से अल्लाह की तरफ़ से तय हैं।

ग़ौर से देखिये तो इन आठों मसारिफ़ में नेकी और ख़ैरात के तमाम हिस्से आ जाते हैं।

(1) **फ़क़ीरों** और

(2) **मिस्कीनों** में वह सब मोहताज और मजबूर लोग शामिल हो जाते हैं जो किसी बीमारी या मजबूरी की वजह से अपनी रोज़ी नहीं कमा सकते।

(3) **आमिलीन** में वह सब लोग आ जाते हैं जो ज़कात के मोहक्मे में काम करते हैं।

(4) **मोअल्लिफ़तुल क़ुलूब** के मातहत वह सब मददें आ जाती हैं जो लोगों को इस्लाम की तरफ़ लाने के लिए दी जाएं।

(5) **"फ़िर्रिक़ाब"** से यह मुराद है कि ग़ुलामों और क़र्ज़दारों की गर्दनों को छुटाने के लिए ज़कात से रुपया ख़र्च किया जाए।

(6) **"ग़ारिमीन"** का मतलब यह है कि जिन लोगों ने लड़ने वाले लोग क़बीलों में सुलह कराने के लिए माली ज़मानत कर ली थी उनकी यह ज़मानत ज़कात से अदा की जा सकती है।

(7) **"फ़ी सबीलिल्लाह"** यानी नेकी के जितने काम हैं सब ज़कात के रुपये से सरअन्जाम दिये जा सकते हैं। जैसे जेहाद वग़ैरा

(8) **"वब्निस्सबील"** मुसाफ़िरों की मदद और उनको राहत पहुँचाने का सामान पहुँचाना, रास्तों का ठीक कराना, पुलों और मुसाफ़िर ख़ानों की तामीर।

इस्लाम ज़कात के ज़रिये से मुफ़्त ख़ोरों और काहिलों की हौसला अफ़्ज़ाई करना नहीं चाहता इसलिए उसने फ़क़ीरों और मिस्कीनों की तारीफ़ भी बता दी।

"उन मुफ़्लिसों के लिए है जो अल्लाह के रास्ते में घिर गए हैं और (रोज़ी कमाने के लिए) ज़मीन पर सफ़र

नहीं कर सकते, अन्जान लोग उनके ना माँगने की वजह से उनको बेज़रूरत समझते हैं। तुम उनके चेहरे से पहचानते हो कि वह हाजतमन्द हैं (अगरचे) लोगों से चिमटकर सवाल नहीं करते।

सदक़ात इकटठा करने का तरीक़ा

हज़रत अली[अ०] ने अपने एक गश्ती हुक्म में सदक़ात इकटठा करने का तरीक़ा बयान फ़रमाया हैः-

"जाओ उस अकेले ख़ुदा का डर दिल में लिये जाओ जिसका कोई साझी नहीं है। (देखना) किसी मुसलमान को हरगिज़ न डराना और ऐसे वक़्त उसके पास से न गुज़रना जब वह पसन्द न करता हो। और अल्लाह का जो हक़ उसके माल में हो इससे ज़्यादा न लेना। जब तुम किसी क़बीले के पास जाओ तो उनके घरों से दूर तालाब के पास उतरो, फ़िर सुकून और वक़ार के साथ उनके पास जाओ और सामने खड़े होकर पहले सलाम करो और पूरे सलाम के आदाब बजा लाओ। फ़िर यह कहो कि ऐ ख़ुदा के बन्दों! मुझे ख़ुदा के वली और उसके ख़लीफ़ा ने तुम्हारे पास इसलिए भेजा है कि तुम्हारे मालों में जो कुछ हक़ ख़ुदा का है वह तुम से वसूल कर लूँ। बस अगर हक़ीक़त में तुम्हारे पास अल्लाह का कोई हक़ है तो उसको अल्लाह के वली के पास पहुँचा दो। इस पर अगर कोई यह कहे कि "नहीं" तो फ़िर उससे बहस न करो और अगर कहे कि "हाँ है" तो उसके साथ जाओ और बिना डराए धमकाए, ज़बरदस्ती और सख़्ती के बिना जो कुछ वह सोने और चाँदी में से दे ले लो। अगर उसके पास जानवर हों और ऊँटनियाँ हो तो उनके गले में बग़ैर उसकी इजाज़त के दाख़िल न हो क्योंकि ज़्यादा हिस्से का मालिक तो आख़िर वही है; और जब (मालिक की इजाज़त से) उसमें दाख़िल भी हो तो इस तरह नहीं जैसे क़ब्ज़ा जमाने वाले और ज़ालिम शख़्स दाख़िल होते हैं, न किसी जानवर को भड़काओ, न डराओ, ग़रज़ उनके साथ कोई ऐसी बात न करो जो मालिक को बुरी मालूम हो; और माल को दो हिस्सों में तक़सीम कर दो और उसको इख़्तियार दे दो (कि जो हिस्सा चाहे ले ले) और जब वह कोई हिस्सा पसन्द कर ले, तो उससे हिस्से के बारे में कुछ बहस न करो। बस बराबर ऐसा ही करते रहो यहाँ तक कि सिर्फ़ इतना माल बाक़ी रह जाए जिससे ख़ुदा का हक़ पूरा होता है। बस इस को ले लो। (बस अगर उसमें कोई ऐसा जानवर आ जाए जिसके देने) मालिक माफ़ी माँगे तो माफ़ कर दो और सारे माल को आपस में मिलाकर इस तरह नई तरह से तक़सीम करो, यहाँ तक कि तुम उसके माल में से अल्लाह का हक़ भी ले लो (और उसे शिकायत का मौक़ा भी न रहे)।

बक़िया............क्या ख़िलाफ़ते अलविया......... पर लाना ज़रूरी समझा जो फ़ायदेमंद साबित न हुआ फिर आपने भरोसेमंद लोगों को सिफ़ारिश के लिए भेजा फ़िर भी कुछ सुनवाइ न हुई इसके बाद बेवास्ता और ग़ैर सरकारी लोग जैसे, कैनुक़ाअ़ वग़ैरा आपस में सुलह कराने में लगे मगर नाकाम रहे लेकिन फ़िर भी आपने शुरुआत न की और नौबत यह हो गई कि बसरा में फ़साद हो चुके थे हकीम और उसके बेटे और भाई के क़त्ले आम हो चुके, तमाम क़बील-ए-ख़ज़ाअ़ी तबाह व बर्बाद कर डाले गए, राजधानी और बसरा का बैतुलमाल लुट चुका, उस्मान इब्ने हनीफ़ अन्सारी मौजूदा आमिले बसरा की दुर्गत बन चुकी। उस वक़्त तक आप ख़ामोश रहे, बल्कि जंग के वक़्त भी जब मुस्लिम इब्ने अब्दुल्लाह, हदील इब्ने वरक़-ए-ख़ज़ाअ़ी और उनके भाइयों का ख़ून हो चुका, तो आपने देखा कि यह ख़ामोशी हमारे साथियों की ग़रीब (अज़ीज़) जातों के बर्बाद होने की वजह हो रही है तो अब आप भी बचाव के लिए उठ खड़े हुए, आपने कहीं से इसका मौक़ा न दिया कि लोग यह कह सकें कि अली[अ०] की ख़िलाफ़त के दौर में सैकड़ों मुसलमानों का ख़ून हो गया आपने जंग में मुसलमान देर इतनी कि फ़ौज वाले इतना बेक़रार थे कि जिसकी कोई इन्तेहा नहीं रह गई थी, यहाँ तक कि इन लोगों ने कह दिया कि अल्लाह की पनाह अली[अ०] मौत से डर कर जंग नहीं करते।

इसके बाद फ़िर जमल की मश्हूर लड़ाई हुई जिसके वाक़ेआ़त लिखकर मुझे तूल देना मक़सूद नहीं है, फिर शाम की बग़ावत की शुरुआत हुई और सिफ़्फ़ीन की लड़ाई हुई जिसमें भी हज़रत आगे नहीं बढ़े बल्कि नसीहत व हिदायत का कोई भी मौक़ा नहीं छोड़ा। ख़त पर ख़त लिखे, वफ़्द पर वफ़्द भेजे यहाँ कि आपके भेजे हुए लोग शाम की दरबार से निकाल दिये गए जब यह ख़राब हालात जमहूरियत के मज़बूत निज़ाम को अपनी भरपूर ताक़त से मिटाने के लिए इतने तैयार हो गए और समाजी ज़िन्दगी में हद का बिगाड़ पैदा हो गया, इक़्तेदार पसन्दी की पुरानी जेहालत वाली रस्म पलटने लगी, इस्लाम के क़ानून, इक़्तेदार पसन्दी में मिटने लगे, तो अब आप भी जंग पर तैयार हो गए लेकिन फ़िर भी आप ने बड़े सब्र से काम लिया यहाँ तक कि जंग के मैदान में भी पहल करना गवारा न किया तो लोग कानाफूसी करने लगे, तो आपने अपने एक ख़ुतबे में इरशाद फ़रमाया किः

"वह इस तरह बे तहाशा मेरी तरफ़ लपके जिस तरह पानी पीने के दिन वह ऊँट एक-दूसरे पर टूटते हैं कि जिन्हें उनके चलाने वालों ने पैरों के बन्धन खोल कर छोड़ दिया हो। यहाँ तक कि मुझे यह लगने लगा कि या तो मुझे मार डालेंगे। (ख़ुतबा न०-54)